डुग्गर के प्रसिद्ध तीर्थस्थल

❐ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

प्राचीनकाल से ही डुग्गर की धरती जिसके अधिकांश भाग का नाम मद्र देश था, देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियों की रंग एवं साधना-स्थली रही है। इस विषय में ऋग्वेद से लेकर धर्मोत्तर पुराण का सम्पूर्ण साहित्य साक्षी के रूप में विद्यमान है।

समय के साथ-साथ ज्यों-ज्यों यहाँ पर विदेशी जातियों या धार्मिक विश्वासों के लोग आते गये त्यों-त्यों उनके धार्मिक विश्वासों ने भी यहां अपने पैर जमाने आरम्भ कर दिये। यह डुग्गर की धर्म प्रधान संस्कृति की ही महिमा है कि यहां की नदियों, झीलों और पर्वतों को भी धार्मिक महत्व प्राप्त होता गया। इसीलिए देविका नदी को (जो शुद्ध महादेव प्रदेश से निकलकर डुग्गर प्रदेश से बहती हुई पाकिस्तान में पहुँचकर रावी नदी के साथ मिल जाती है) पार्वती का नदी रूप माना गया है। (उमा देवीति, मद्रेषु देविका या सरिद्वरा) मद्र देश में उमा (पार्वती) ने श्रेष्ठ नदी का रूप धारण कर लिया हुआ है।

इसी प्रकार भद्रवाह के पास कैलाश पर्वत पर स्थित वास कुण्ड नामक झील तथा सरुईसर तथा मानसर नामक झीलों के साथ भी लोगों के धार्मिक विश्वास जुड़े हुए हैं।

इस प्रदेश के धर्म-स्थलों की संख्या बहुत अधिक है, अतः हम केवल प्रसिद्धतम धर्मस्थलों का विवेचन करना चाहेंगे।

वैष्णवी पीठ - यह सिद्ध देवी पीठ डुग्गर के प्रसिद्धतम धर्मस्थलों में मूर्धन्य है। इसकी महिमा एवं ख़्याति भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी फैली हुई है। इस सिद्ध पीठ में विराजमान भगवती त्रिकूटा (वैष्णवी) के दर्शनार्थ भारत के कोने-कोने से तथा विदेशों से प्रतिवर्ष लाखों यात्री आकर पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं। 3 अगस्त 1986 ई. से अब यह एक स्वशासित न्यास ट्रस्ट के अधीन है।

यह सिद्ध पीठ जम्मू नगर से उत्तर की ओर हिमालय पर्वत श्रृंखला के एक त्रिकूट नामक पर्वत के पश्चिमी पार्श्व में एक 15 फुट लम्बी प्राकृतिक गुफा के भीतर स्थित है। यह गुफा भीतर से लगभग 4 वर्ग फुट व्यास में फैली हुई है। इसी के पूर्वी भाग में भगवती महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की प्रतीक पत्थर की तीन पिण्डियां विराजमान हैं। इन्हीं तीनों का

* *पूर्व प्रकाशित हमारा साहित्य-1987*

सांझा नाम त्रिकूटा या वैष्णवी है, जिसे जनसाधारण 'वैष्णो देवी' नाम से जानते हैं। क्योंकि यह पर्वत त्रिकूट है और इसकी गुफा में सत्व, रज और तमो गुण की प्रतिनिधि महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली की प्रतीक तीन पिण्डियां विराजमान हैं, अतः इसका तान्त्रिक महत्व भी स्वतः सिद्ध है।

वस्तुतः भारत के प्राचीन धार्मिक एवं तान्त्रिक साहित्य में जिस वैष्णवी भगवती का उल्लेख आता है वह भगवान विष्णु की शक्ति का आम प्रचलित नाम है। इस गुफा में स्थित तीन पिण्डियों में प्रधान पिण्डी भगवती वैष्णवी की प्रतीक है, अतः इसी कारण से इस पीठ का वैष्णवी पीठ नाम पड़ जाना स्वाभाविक है। ये तीनों शक्तियां होने के कारण इस सारी सृष्टि के रक्षण, पोषण और शिक्षण की व्यवस्था करतीं हैं। इन्हीं तीनों के विविध नामों तथा रूपों की हमारे देश में सर्वत्र देशकाल द्वारा प्रभावित रीति-रिवाज़ों के अनुसार पूजा-अर्चना होती है।

हमारे पौराणिक साहित्य में देवी के अनेक रूपों की विशद् चर्चा है। इस विषय में मार्कण्डेयपुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कन्दपुराण, गरुड़पुराण, देवीभागवतपुराण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

एक अन्य कथा के अनुसार प्राचीनकाल में वैष्णव धर्मावलम्बी और शैवमत के अनुयायी भैरव के मध्य भारी वैमनस्य उत्पन्न हो गया था। अन्ततः भैरव से डर कर वैष्णवी मैदान छोड़कर पर्वतीय प्रदेश की ओर भाग गए थे। वैष्णवों की सेना का नेतृत्व वैष्णवी नामक एक युवा कुंवारी कन्या कर रही थी। इनका पहला भयंकर युद्ध घंडोली नगरोटा नामक स्थान पर हुआ था। इसीलिए यहां बाद में देवी के भक्तों द्वारा एक मन्दिर बनाया गया था। इसके बाद कटड़ा के पास नमाईं नामक स्थान पर भैरव ने अपनी सेना के साथ भगवती वैष्णवी पर आक्रमण कर दिया। जिसे देवी ने असफल बना दिया। कुछ समयोपरान्त देवी के भक्तों ने यहां पर भी एक मन्दिर बनवाया जो आज 'देवामाई' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद जिस तीसरे स्थान पर देवी वैष्णवी और भैरव का युद्ध हुआ था, उसे आज आदि कुंवारी के नाम से जाना जाता है। यह स्थान बाण गंगा को पार करके तथा कुछ चढ़ाई चढ़ने के बाद आता है। कहते हैं कि भैरव ने इस स्थान पर देवी के साथ सन्धि का प्रस्ताव रख कर देवी के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की थी जिसे देवी ने तुरन्त ठुकरा दिया था। इसके बाद देवी हाथी-मत्था और साँझी छत आदि स्थानों से होती हुई गुफा द्वार पर पहुंच गई, परन्तु भैरव ने वहां तक भी देवी का पीछा किया। उस समय भगवती ने क्रोधित होकर अपने खड्ग से भैरव का सिर धड़ से अलग कर दिया था। खड्ग का प्रहार इतना तेज़ था कि भैरव का सिर उछल कर लगभग तीन किलोमीटर दूर (कटड़ा की ओर) आकर गिर गया था। यहां उसका सिर गिरा था, वहां भी देवी भक्तों ने एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया था। देवी भक्तों द्वारा भैरव को इतना महत्व देने का कारण था। भैरव द्वारा मरते समय देवी के आगे प्रार्थना करके अपने गुनाहों के लिए क्षमा माँगना। अब वैष्णवी भगवती का दर्शन करने के

लिए आने वाले यात्री गुफा में भगवती के दर्शन करने के बाद ही भैरव के कटे मस्तिष्क (अब पत्थर रूप में) के दर्शन करते हैं।

यात्रा विवरण -

जम्मू-कश्मीर के बाहर से आने वाले यात्री अपनी सुविधा तथा इच्छानुसार रेल, बस, टैक्सी, कार, मोटर-साइकल, साइकल, हवाई-जहाज आदि से यात्रा करके पहले जम्मू और फिर कटड़ा तक पहुंचते हैं। जो यात्री रेल तथा हवाई जहाज से आते हैं, उन्हें भी जम्मू आकर बस का ही आश्रय लेना पड़ता है। हां, दूसरे वाहनों द्वारा जम्मू तक आने वाले यात्री अपनी यात्रा कटड़ा तक जारी रख सकते हैं। कटड़ा से सभी यात्री पैदल या घोड़ों, पालकियों या पिट्ठुओं के द्वारा भगवती के पवित्र गुफा द्वार तक पहुंचते हैं। आजकल वैष्णों देवी ट्रस्ट द्वारा यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए कटड़ा से लेकर गुफाद्वार तक बड़े ही प्रशंसा योग्य प्रबन्ध किए गए हैं। स्थान-स्थान पर धर्मशालाएं, विश्रामालय, वाटर-कूलर आदि अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएं प्रस्तुत की गई हैं। इसी प्रकार भवन के समीप भी आवास, शौचालय, स्नानघर आदि के भी सुप्रबन्ध हैं।

बालासुन्दरी- जम्मू प्रान्त के जिला मुख्यालय कठुआ से लगभग 10 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम की ओर नगरीपरोल के पास भगवती बालासुन्दरी का एक प्राचीन मन्दिर है, जिसके भीतर भगवती बाला तथा सुन्दरी की दो पिण्डियां विराजमान हैं। यात्री इन्हीं के दर्शन करके पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं।

इस मन्दिर का आकार यद्यपि इतना विस्तृत नहीं है, परन्तु इसकी दो-दो फुट के लगभग मोटी दीवारों से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यहां प्रारम्भ में अति विशाल मन्दिर बनाने की योजना बनाई गई होगी जो किसी कारण से कार्यान्वित नहीं हो सकी होगी या फिर यहां एक विशाल मन्दिर बन जाने के बाद विदेशी आक्रान्ताओं ने उसे ध्वंसत कर दिया होगा। मन्दिर के भीतर पूजा स्थान के पास ही एक छोटे से ताक में एक पत्थर पर उकेरा हुआ ब्राह्मी लिपि में शिलालेख यदि पढ़ा जा सके तो इस मन्दिर के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सकती है। खेद की बात है एक ताम्रपत्र पर लिखा अभिलेख मन्दिर के पुजारी के घर से चोरों द्वारा चुरा लिया गया है, अन्यथा वह भी इस मन्दिर के बारे में जानकारी देने में सहायक सिद्ध हो सकता था।

कहा जाता है कि प्राचीन काल में नगरीपरोल के एक ब्राह्मण ने जब इस मन्दिर के स्थान पर अपनी गाय के लिए लोहे की 'खुरपी' के साथ घास कुरेदना प्रारम्भ किया तो उसकी खुरपी में अचानक रक्त के धब्बे लग गए। वह ब्राह्मण यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया। क्योंकि वह धार्मिक विचारों का व्यक्ति था, अतः वह प्रायश्चित भाव से ग्रस्त होकर वहीं पर बैठ गया तथा खाना-पीना छोड़कर ईश्वर का नाम जपता हुआ यह प्रार्थना करने लगा कि जब तक खुरपी में रक्त लगने के कारण के बारे में सही जानकारी प्राप्त नहीं होगी, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा। जब उसे इस प्रकार अन्न-जल छोड़े तीन दिन हो गए तो रात के समय उसे दो कन्याएं दिखाई पड़ी जिन्होंने उसे उसी स्थान को खोदने का संकेत दिया। प्रातः होते ही जब उसने धीरे-धीरे उस स्थान को खोदा तो उसे दो पिण्डियां दिखाई पड़ी, जिन्हें देखकर वह अति प्रसन्न हुआ। उसने उनकी तत्काल पूजा-आराधना की और उन्हें वहीं पर स्थापित कर दिया। कुछ समय बाद वहां पहले छोटा और बाद में विशाल मन्दिर बनाया गया (सम्भवतः किसी राजा द्वारा)।

आजकल इस देवी पीठ की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। जम्मू प्रान्त (डुग्गर प्रदेश) के यात्री तो यहां आते ही हैं पर पंजाब और हिमाचल प्रदेश से आने वाले यात्रियों की संख्या भी हज़ारों में होती है। शरद तथा चैत्र के नवरात्रों में तो इस मन्दिर के आस-पास विशेष चहल-पहल रहती है। नित्य हवन तथा पूजा-आराधना निरन्तर चलती रहती है। कुछ श्रद्धालु लोग अपने बच्चों के कर्णबेध संस्कार भी यहीं पर सम्पन्न करते हैं तथा अनेक प्रकार की मनौतियां मानकर मनवांछित फल प्राप्त करते हैं।

सरथल देवी - जम्मू-कश्मीर राज्य के डोडा जिला के अन्तर्गत किश्तवाड़ तहसील में सरथल नामक पर्वत पर बने मन्दिर में अष्टदश भुजाओं से सुशोभित काले पत्थर से निर्मित भगवती की मूर्ति विराजमान है, जिसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। इस मूर्ति को देखकर बड़े-बड़े सिद्धहस्त मूर्तिकार भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

कहते हैं कि यह मूर्ति कश्मीर से तब लाई गई थी जब कश्मीर के क्रूर सुलतान सिकन्दर (1389-1413 ई.) ने हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां तथा मन्दिरों को विध्वंस करना आरम्भ किया था। उस समय देवी भक्तों ने यह मूर्ति छिपाकर कश्मीर से लाई थी और इस स्थान पर स्थापित की थी। प्रसिद्ध डोगरा जरनैल जोरावरसिंह ने इस मन्दिर का पुनरूद्धार करवाकर इस मन्दिर के साथ सैंकड़ों कनाल भूमि लगवा दी थी, जिससे यह देवी पीठ हर प्रकार से आत्मनिर्भर हो गया था। पहले यहां पशु बलि भी दी जाती थी, पर अब यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त प्रायः हो चुकी है।

इस मन्दिर के पास ही दो और मन्दिर भी हैं जिनमें एक शिव मन्दिर है जबकि दूसरा शीतला माता का मन्दिर है। नवरात्रों, शिवरात्रि तथा भाद्रपद महीने की अमावस्या को यहां मेले आयोजित किए जाते हैं।

इस देवी पीठ तक पहुंचने के लिए आज भी यात्रियों को सात किलोमीटर पैदल यात्रा करनी पड़ती है, परन्तु यात्री फिर भी हर वर्ष हज़ारों की संख्या में यहां पहुंच कर देवी दर्शनों से कृतार्थ होते हैं।

सुकराला देवी - डुग्गर के धर्म स्थलों में देवी सुकराला का भी अपना गौरवपूर्ण स्थान है। सुकराला देवी को मल्ल देवी के नाम से अभिहित किया जाता है। यह स्थान बिलावर से लगभग आठ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर है।

एक दन्त कथा के अनुसार प्राचीनकाल में क्योंकि इस स्थान के समीप महर्षि शुक्र (भृगु) का आश्रय था। अत: इस स्थान का नाम शुक्रालय भी हो सकता है और बाद में ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण सुकराला रूप में विकसित हो गया है। इसके अतिरिक्त क्योंकि इस मन्दिर के भीतर महाकाली की मूर्ति विराजमान है, इसलिए सु + कराला = भयंकर (शत्रु के लिए) रूपवाली नाम भी उपर्युक्त जान पड़ता है।

कहा जाता है कि सन् 1811 ई. में डुग्गर के प्रसिद्ध कवि दत्त (दत्तु) के गुरु पं. सूर्यनारायण एक बार यहां आए थे तो उन्होंने यहां श्री यन्त्र की स्थापना की थी जिस पर मन्दिर का निर्माण किया गया था। परन्तु यह भी प्रमाणित हो चुका है कि यह मन्दिर पं. सूर्यनारायण के यहां आने से बहुत समय पहले बनाया जा चुका था। इस बारे में एक अन्य प्रचलित कथा इस प्रकार है - चम्बा नरेश राजा ऊमेद सिंह एक बार सुकराला देवी के समीपवर्ती वन में शिकार खेलने के लिए आया था। यहां उसने अनेक वन्य पशुओं का शिकार किया, जिससे देवी उस पर रुष्ट हो गई। परिणामत: वह सख़्त बीमार पड़ गया। अनेक उपाय करने पर भी जब राजा उमेद सिंह की हालत न सुधरी तो बिलावर के शिवनन्दन पाधा नामक एक तान्त्रिक को यहां बुलाया गया। उसने अपनी तान्त्रिक शक्ति से बतलाया कि राजा पर इस प्रदेश की सुकराला देवी का प्रकोप हो गया है। राजा ने पास की बावली के तट पर लगे चमेली के झाड़ के नीचे दबी पड़ी देवी की मूर्ति बाहर निकलवा कर उसकी पूजा करके उसकी स्थापना करवाई और वहां एक मन्दिर का निर्माण भी करवाया। यह वर्तमान मन्दिर वहीं है। क्योंकि राजा उमेदसिंह का राज्य काल ई. 1748-1764 अवधि में रहा, अत: इसी अवधि के बीच किसी समय इस मन्दिर का निर्माण करवाया होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है।

अब यातायात की सुविधाएं बढ़ जाने से सुकराला भगवती के दर्शनार्थ प्रतिवर्ष हजारों यात्री आते हैं तथा विशेषकर नवरात्रों में तो भारी भीड़ रहती है। पहले यहां भी बकरे की बलि दी जाती थी, कभी-कभी तो दिन-भर बकरे काटे जाते थे, जिससे मन्दिर के आगे का दृश्य कंपा देने वाला होता था। परन्तु अब देवी भक्तों ने देवी को हलवा प्रसाद से ही प्रसन्नता के लिए मनवा लिया है।

पुरमण्डल तीर्थ - जम्मू प्रान्त के धर्मस्थलों में पुरमण्डल का भी महत्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का विचार है कि प्राचीन काल में यह स्थान महाराज पुरूरवा की राजधानी थी। जैसा कि ऊपर कहा गया है इस स्थान से होकर बहने वाली देविका नदी को हिन्दू धर्म ग्रन्थों में पार्वती का रूप माना गया है। इस नदी के बारे में विष्णु धर्मोत्तर पुराण, मार्कण्डेय पुराण, नीलमत पुराण, अष्टाध्यायी आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। इसका उद्गम स्थल शुद्धमहादेव के समीपवर्ती सहस्रधारा नामक स्थान से माना गया है। इस स्थान से लेकर पाकिस्तान में रावी के साथ इसके मिल जाने तक यह नदी पवित्र मानी गई है तथा इसका महत्व भी गंगा के समान है। इसके तट पर जहां कहीं पर भी मृत देह का अन्तिम संस्कार किया जाता है उसकी अस्थियों का चयन न करके इसी में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रकार इस नदी का गंगा नदी से

किसी भी प्रकार कम महत्व नहीं है।

इस नदी की दो अन्य विशेषताएं भी हैं -

(1) अपने उद्गम स्थल से लेकर पुरमण्डल तीर्थ तक यह कहीं दृश्य और कहीं अदृश्य रूप में बहती है।

(2) यह वर्ष-भर में कई बार भूमिगत होकर अधिक बहती है, जबकि भूमि के ऊपर बहुत कम। अतएव वर्षा ऋतु या अन्य वर्षा वाले दिनों को छोड़कर अब भी स्नान आदि के लिए इससे जल प्राप्त करना हो तो इसमें खड्ढा खोदना पड़ता है। खड्ढा खोदने के कुछ समय के बाद पानी से भर जाता है जिसमें लोग स्नानादि करके अपना तीर्थ कृत्य सम्पन्न करते हैं।

पुरमण्डल से लगभग सात किलोमीटर दक्षिण की ओर देविका नदी मोड़ लेकर जब उत्तराभिमुख होकर बहने लगती है तो इसका नाम उत्तरवाहिनी पड़ जाता है। जम्मू-कश्मीर के स्व० महाराजा रणवीर सिंह (1858-1885 ई०) ने पुरमण्डल से लेकर इस स्थान तक पूरे प्रदेश को काशी के समकक्ष बनाने के लिए यहां अनेक मन्दिरों के निर्माण की योजना बनाई थी, परन्तु महाराज की असामयिक मृत्यु हो जाने से उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया था। गत वर्ष राज्य के धर्मार्थ ट्रस्ट जिसके स्वत्वाधिकारी महाराजा रणवीर सिंह के ही वंशज डॉ० कर्णसिंह ने एक अधूरे मन्दिर का निर्माण पूर्ण करवाया।

शुद्ध महादेव - डुग्गर के शीर्ष धर्म स्थलों में यदि शुद्ध महादेव को वैष्णवी पीठ के समकक्ष माना जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। यह स्थान जम्मू से एक-सौ-सात कि.मी. की दूरी पर पूर्वोत्तर दिशा में हिमालय पर्वत श्रृंखला के दामन में है।

एक दन्त कथा के अनुसार शुद्ध महादेव से तीन किलोमीटर पूर्व-दक्षिण कोण में एक मानतलाई नामक स्थान पर राजा हिमालय की राजधानी थी, जिसकी पुत्री गौरी शिव की उपासिका थी और उन्हें पति रूप में वरण करना चाहती थी। वह प्रतिदिन समीप के गौरी कुण्ड में स्नान करके शुद्ध महादेव स्थान पर शिवलिंग पर जल चढ़ाया करती थी। उसी के निकट नाडा नामक स्थान पर एक शुद्धान्त नामक दैत्य रहता था जो गौरी पर आसक्त हो चुका था, अत: गौरी जब घर से निकलकर उक्त कुण्ड में स्नानार्थ तथा शिव पूजनार्थ जाती थी तो वह दैत्य उसे सताने का प्रयत्न करता। गौरी उसकी घिनौनी चेष्टाओं से अति दुखी हो चुकी थी। परिणामत: उसने एक दिन अति क्षुब्ध होकर भगवान शिव के आगे उस राक्षस से अपनी शील की रक्षा के लिए प्रार्थना की। आशुतोष शिव ने भी तुरन्त गौरी की प्रार्थना मान कर अपना भारी त्रिशूल लेकर उस राक्षस पर धावा बोल दिया। राक्षस शिव के भयंकर रूप से डर कर भाग खड़ा हुआ। शिव ने भागते हुए राक्षस पर ज्यों ही जोर से अपना त्रिशूल फेंका वह राक्षस को लग भी गया और साथ ही टूट कर टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर गिर भूमि में गढ़ गया। राक्षस ने गिरते ही शिव-शिव रटना शुरू कर दिया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान

आशुतोष ने उसका अपराध ही क्षमा नहीं किया अपितु उसे यह वरदान भी दिया कि आने वाले समय में मेरा यह स्थान 'शुद्ध महादेव' कहलाएगा। अर्थात् भविष्य में मेरे नाम से पहले तुम्हारा नाम जुड़ कर ही इस स्थान की पहचान हो सकेगी एवं यह तीर्थ संसार-भर में प्रसिद्ध हो जाएगा।

यदि उपर्युक्त दन्त कथा को सच भी मान लिया जाए तो भी इस मन्दिर के परिसर की भूमि में गहरे गढ़े त्रिशूल के टुकड़ों पर उत्कीर्ण लेख के भावार्थ के बारे में गुत्थी बिना सुलझी ही रह जाएगी। इस विषय में एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि त्रिशूल पर अंकित ब्राह्मी लिपि को यथा सम्भव पढ़ने से जिस राजा विभु नाग का नाम सामने आया है वह अवश्य ही भारशिव नागवंशीय राजा का नाम है जिसका समय इतिहासकारों ने ई. सन् 290-315 माना है। इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवत: शुद्ध महादेव को तीर्थ रूप में प्रसिद्ध करने में नागराजाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा होगा।

इस मन्दिर के भीतर विराजमान काले पत्थर से निर्मित शिव और पार्वती की मूर्तियां कला का सुन्दर नमूना है। कहते हैं कि इस मन्दिर का पुनरुद्धार गुरु गोरखनाथ के गोरखपंथ के अनुयायी योगी रूपनाथ ने करवाया था।

श्रद्धालु लोग प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में इस पवित्र तीर्थ की यात्रा करते हैं। आषाढ़ पूर्णिमा को यहां विशाल मेला लगता है। डुग्गर में इस पूर्णिमा को 'शुद्धि की पुन्यां' नाम से अधिक जानते हैं। शुद्ध महादेव मन्दिर से कुछ किलोमीटर के अन्तर पर देविका तवी तथा भर्तृहरि नदियों का संगम है जिसे 'विनिसांग' कहते हैं। यहां स्नान करने से मनुष्य को पुण्य लाभ होता है। इस स्थान पर एक जीर्ण-शीर्ण शिव-पार्वती का मन्दिर भी है। ये भी काले पत्थर से गढ़ी हुई मूर्तियां हैं। विनिसांग से आठ किलोमीटर दूर पहाड़ी पर 'कलासर' नामक झील है। इसी से भर्तृहरि नदी का उद्गम होता है। कलासर झील से ही गौरी कुण्ड की ओर सीधा पगडंडीनुमा रास्ता जाता है। गौरी कुण्ड से 'गोकर्ण तीर्थ' और यहां 'अम्बुनिज' तीर्थ को रास्ता जाता है। अम्बुनिज तीर्थ के सन्निकट ही 'सोमतीर्थ' है। इसके शुद्ध-पवित्र जल-स्रोत में स्नान करके लोग पुण्य लाभ करते हैं। इस तीर्थ से थोड़े से अन्तराल के बाद आ जाती है 'पापनाशिनी बावली' और वहीं से यात्री मानतलाई स्थल पर पहुँच जाते हैं। भारतीय पुरातत्व वेत्ताओं का मत है कि सम्भवत: यहीं पर किसी हिमालय नाम वाले पौराणिक राजा के महल रहे होंगे जिसके घर पार्वती ने जन्म लिया था और इसी स्थान शिव-पार्वती का विवाह भी सम्पन्न हुआ था।

आजकल यहां पर धीरेन्द्र ब्रह्मचारी का आधुनिक सुख-साधनों से सुसज्जित अपना नामक योग आश्रम है।

ऐरावती तीर्थ - डुग्गर के धर्म स्थलों में ऐरावती (ऐरवां) तीर्थस्थल का भी विशिष्ट स्थान है। यह स्थान जम्मू प्रान्तान्तर्गत कठुआ नगर से 10 किलोमीटर पश्चिम की ओर है।

यहां दो प्राचीन शिव मन्दिर हैं तथा एक नवनिर्मित गंगा मन्दिर भी है। इसके साथ ही तीन जलाशय हैं, जो मृत व्यक्तियों के अस्थि-प्रवाह के लिए निश्चित हैं। इससे स्पष्ट है कि यह जलाशय डुग्गर की दूसरी गंगा है, अर्थात् पहली देविका नदी और दूसरा यह तालाब।

ऐरावती के शिव मन्दिरों की वास्तुकला बौद्ध स्थापत्यकला से प्रभावित प्रतीत होती है। पुराने शिव मन्दिर में शिवलिंग भी फर्श के समतल से नीचे है और उस पर एक प्रहार का चिन्ह है जिसके साथ अनेक दन्तकथाएं जुड़ी हुई हैं, परन्तु सम्भवत: किसी विदेशी आक्रान्ता ने इसे ध्वंस्त करने का प्रयत्न किया होगा।

इस तीर्थ के बारे में एक प्राचीन कथा इस प्रकार है - प्राचीनकाल में जब राजा भागीरथ गंगा को स्वर्ग से धरती पर ला रहे थे तो गंगा के धरती पर बहते ही एक स्थान पर चट्टान से अवरोध आ गया और उस स्थान पर तुरन्त भारी मात्रा में जल एकत्र होकर वहां झील जैसी बन गई। उस समय भागीरथ ने घबराकर इन्द्र के आगे सहायता के लिए प्रार्थना की। इन्द्र ने भागीरथ की सहायता के लिए अपना 'ऐरावत' नामक हाथी भेजा, जिसने चट्टान को तो हटा दिया परन्तु उसके तीव्र प्रवाह से वह स्वयं बह गया। जब इन्द्र ने भागीरथ से अपना हाथी मांगा तो वह निरूत्तर हो गया तब इन्द्र से कुछ समयोपरान्त हाथी लौटाने का वायदा करके भागीरथ शिव की आराधना करने लगा। शिव ने प्रसन्न होकर जैसे 'तथास्तु' कहा वैसे ही वहीं पर धरती फटी और ऐरावत बाहर आ गया और इसलिए इस स्थान का नाम ऐरावती, पड़ गया जो ध्वन्यात्मक परिवर्तन से बाद में 'ऐरवां' प्रसिद्ध हो गया। बाद में इस स्थान पर शिव मन्दिर बन गए।

इस धर्मस्थल की जम्मू प्रान्त, पंजाब तथा हिमाचल में पर्याप्त प्रसिद्धि है ? शिवरात्रि, वैशाखी, मकर संक्रान्ति आदि पर्व दिनों पर यहां भारी मेले लगते हैं।

बिल्वेश्वर महादेव - बिलावर का यह प्राचीन मन्दिर अपनी अभूतपूर्व तथा अद्भुत कला के लिए पुरातत्व वेत्ताओं के लिए आज भी आश्चर्य बना हुआ है। जबकि स्थापत्य कलाविदों के लिए बड़ी चुनौती भी है। विद्वानों का यह कहना उपयुक्त ही है कि इस मन्दिर की स्थापत्य कला पर न तो कश्मीर के मार्तण्ड मन्दिर की कला का प्रभाव है और न अवन्तिपुरा के मन्दिरों का और न ही उत्तर भारत के अन्य मन्दिरों की स्थापत्य कला का इस पर किसी भी प्रकार का प्रभाव है। यह तो डुग्गर की निजी सर्वथा विशुद्ध वास्तुकला का अद्भुत नमूना है। इसकी प्राचीनता को देखते हुए लोग इसे पाण्डवों द्वारा निर्मित होने का अनुमान भी लगाते हैं जो निरी कल्पना के सिवाय कुछ भी नहीं है। अनजान व्यक्ति मन्दिर के पास जाते हुए डर जाता है क्योंकि इसकी बाहरी संरचना ही ऐसी उबड़-खाबड़ है यूं लगता है मानो इसकी ईंटें नीचे गिरने वाली हैं।

इसके भीतरी भाग को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके निर्माण से पहले एक बहुत विशाल योजना बनाई गई होगी जो किसी कारण से कार्यान्वित नहीं की जा सकी होगी।

इस मन्दिर का गर्भ-गृह चतुष्कोण है, जिसके ऊपर अत्यन्त सुन्दर गोलाकार शिखर है, जिसके ऊपर सुन्दर नक्काशी का काम किया हुआ है। मन्दिर की भीतरी दीवारों पर की गई नक्काशी कलाकार की कल्पना शक्ति और बुद्धि कौशल की साक्षी है। इसके अतिरिक्त बिना किसी भवन निर्माण सामग्री के इतनी भारी-भारी शिलाओं को जोड़ना भी कम चमत्कारी काम नहीं है। मन्दिर के भीतर काले पत्थर से निर्मित शिवलिंग तथा शिव-पार्वती की मूर्तियां किंचित् मानवावस्था में होने पर भी कलाकार के बुद्धि कौशल की गवाही देती हुई प्रतीत होती हैं।

इस मन्दिर के बारे में यह विश्वास है कि यदि इसकी कोई ईंट गिरे तो किसी अग्रिम घटना की सूचना होती है या तो देश में कोई आपत्ति आती है या किसी महापुरुष की मृत्यु होती है।

इस मन्दिर के दर्शन के लिए केवल भक्तजन ही नहीं आते हैं अपितु स्थापत्य कला के पारखी, पुरातत्व वेत्ता तथा लेखक भी आते रहते हैं। वैशाखी पर्व पर यहां तीन दिन का भारी मेला रहता है। इसके अतिरिक्त शिवरात्रि, मकर संक्रान्ति, सोमावती अमावस्या तथा प्रत्येक सोमवार के दिन भी यहां विशेष चहल-पहल रहती है। इनके अतिरिक्त-पुन्छ मंडी में बुड्ढा अमरनाथ, भद्रवाह में कैलाश कुंड तथा पौनी पारख में शिवखोड़ी जैसे महत्वपूर्ण तीर्थस्थल हैं जो कालान्तर से डुग्गर-जन मानस के आस्था-प्रतीक बने हुए हैं।

०००